वर्ष 41 ■ अंक 23 – 29
अप्रैल – अक्तूबर 2024
संयुक्तांक मूल्य ₹ 80

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

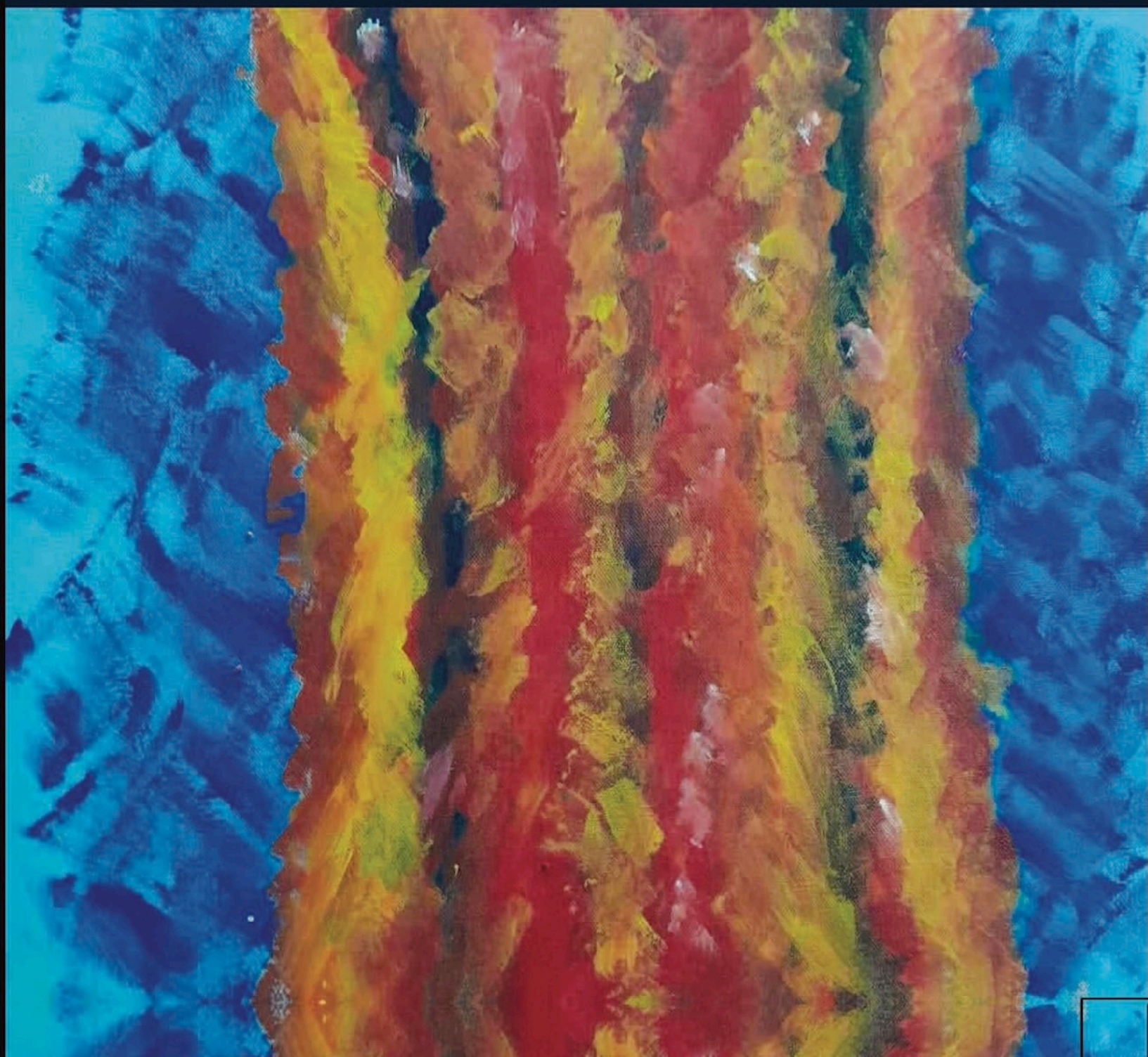

संस्थापक संपादक : विभूति नारायण राय
सलाहकार संपादक : भारत भारद्वाज

☐ वर्ष 41 ☐ अंक 2☐ अप्रैल-2024-अक्टूबर 2024 (संयुक्तांक) ☐ मूल्य 80/-

RNI पंजीकरण संख्या 40342/ 83 UPHIN12563

संपादकीय कार्यालय
राजीव निकेतन 16/57 डी-10, कादीपुर, शिवपुर, वाराणसी (उ.प्र.) पिन-221003
मो. 9005484595, 9531834834
9415893480

ई-मेल :
पत्रिका के लिए- vartmansahitya2021@gmail.com
कार्यालय के लिए-vartmansahitya2024@gmail.com
वेबसाइट : vartmansahitya.org

डिजिटल प्रभार : संदीप मौर्य
प्रसार व्यवस्थापक : अभिषेक ओझा
रेखांकन : संदीप राशिनकर
आवरण : प्रवाल श्रीवास्तव

सहयोग राशि : यह प्रति मूल्य 200 रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त
☐ वार्षिक सदस्यता 1000/- रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित
☐ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए वार्षिक : 1440/-रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित
☐ विदेशों में वार्षिक : 100 डॉलर।
खाता सं. : 28660200000628
IFSC :BARB0SHIVBS
बैक ऑफ बड़ौदा, शाखा-शिवपुर, जिला-वाराणसी (उ. प्र.), 221003
Google Pay **9005484595**
कृपया राशि भेजने की सूचना तत्काल ईमेल, व्हाट्सएप अथवा पत्र द्वारा अपने पते सहित भेजें।

वितरक : रुद्रादित्य प्रकाशन समूह
इलाहाबाद-2111015
फोन नं. 0532-2972226, 8175030339

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से **वर्तमान साहित्य,** संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक है। सभी विवादों का निपटारा इलाहाबाद न्यायालय में होगा।

वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

संपादक
संजय श्रीवास्तव

संपादक मंडल
प्रियदर्शन मालवीय
शैलेन्द्र कुमार मिश्रा, सुरेंद्र राही
आनंद शुक्ल, गोरखनाथ

उप संपादक
शशि कुमार सिंह

सयुक्त संपादक
अलका प्रकाश

सह संपादक
ज्ञानचंद बागड़ी - छोटे लाल सरोज

संपादन सहयोग
इन्दु श्रीवास्तव, संजीव कुमार मौर्य
अजीत यादव

अनुक्रम

वक्तव्य

- ❑ समय ही हमारी रचनात्मक बेचैनियों का सबब है – ज्ञानरंजन ... 8

संस्मरण

- ❑ प्रदीप सक्सेना : एकाग्र समर्पण और निष्ठा से बनी पहचान – मधुरेश ... 11

आत्म

- ❑ बुझता हुआ सहस्त्राब्द –सुभाष गाताडे ... 21

विशेष लेख

- ❑ 'गीता' का अंग्रेजी रोमैण्टिक कविता पर अप्रतिम प्रभाव – के. जी. श्रीवास्तव ... 28

स्तम्भ : कविता से लौटते हुए

- ❑ लीलाधर जगूड़ी : 'शंखमुखी शिखरों' से चल कर..... – दिनेश प्रताप सिंह ... 37

कहानी

- ❑ कुमुदिनी – रूपसिंह चन्देल ... 53
- ❑ निगूढ़ी – दीपक शर्मा ... 61
- ❑ अपहरण – प्रियदशन मालवीय ... 65
- ❑ वारिस – हेमन्त कुमार ... 70
- ❑ बावड़ी का जिंद – ज्ञान चन्द बागड़ी ... 73

लेख

- ❑ शिव कुमार बटालवी : कोख के भीतर की कब्र की आह – सुखदेव सिंह सिरसा ... 77
- ❑ स्टालिन के किस्से – यूरी बोरिसोविच बोरेव(अनु.) दिविक रमेश . 84
- ❑ हरिशंकर परसाई और मध्यवर्गीय जीवन – रेनू त्रिपाठी ... 88
- ❑ सामंजस्य का खतरनाक दौर – अरुण कुमार ... 93
- ❑ खिलाफत के जननायक थे अल्लाह बख्श़ – राजेंदर राजन ... 100

कविताएँ

- ❑ महमूद दरवेश (अुन.) केवल गोस्वामी ... 104
- ❑ राजेन्द्र नागदेव ... 105
- ❑ कविता कृष्णपल्लवी ... 107
- ❑ ब्रज श्रीवास्तव ... 112
- ❑ स्वदेश भटनागर ... 115
- ❑ गणेश गनी ... 117
- ❑ जावेद आलम ख़ान ... 119

लघुकथा

- ❑ लघुकथाएँ – कस्तूरीलाल तागरा ... 122
- ❑ मोहब्बत – रख़्शंदा रूही मेहदी ... 125

सिने समीक्षा

- ❑ धीमे-धीमे चले री पुरवइया, पूछे कहाँ छूटी है तू चिरइया (लापता लैडिज़) – विमलेश वर्मा ... 126

पुस्तक समीक्षा

- ❑ प्रेम को बचाने की जिद- 'आउशवित्ज़ एक प्रेमकथा' – प्रफुल्ल कुमार ... 129
- ❑ दास्तान-ए-जहांआरा – दीपेन्द्र सिंह सिवाच ... 132
- ❑ बीसवीं सदी की प्रतिनिधि कहानियों पर मुकम्मल आलोचनाएँ – अवनीश मिश्र ... 134
- ❑ दहन : उम्मीद कि जमाना एक दिन बदलेगा – राहुल शर्मा ... 137
- ❑ हेति : पौराणिक सुकन्या के माध्यम से समकालीन विवाह विमर्श को उकेरता अद्भुत उपन्यास –वंदना वाजपेयी ... 139

गतिविधियाँ

- ❑ 'वर्तमान साहित्य' का वार्षिक आयोजन : रिपोर्ट- आयुष प्रजापति ... 141
- ❑ 'ढाई आखर प्रेम' सांस्कृतिक यात्रा : इप्टा की रिपोर्ट : शहज़ाद रिज़वी
- ❑ जानकी पुल ट्रस्ट द्वारा मनोहर श्याम जोशी स्मृति व्याख्यानमाला का आयोजन ... 148

●●●

हम देखेंगे.....

इस अंधे दौर को प्रबोधन की फिर ज़रूरत है.....

साधो,

प्रसिद्ध कवि गिरजा कुमार माथुर याद आ रहे हैं। उनकी कविता का ये अंश संताप के साए की तरह मानो हमारा पीछा कर रही है :

संक्रान्ति की घड़ियाँ
बनी हैं शृंखला
बंदी हुई है देह
मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं
है फेन विष का फैलता ही जा रहा
अब डूबता अन्तिम ग्रहण की छाँह में
आलोक हत नक्षत्र मिट्टी से बना
जिसका कि पृथिवी नाम है।

पाठ में त्रास की गहन एवं तीव्रतम अनुभूति मौजूद है। मन को बांधने की विवशता का भाव 'रेत ज्यों तन हो रहा' की वैयक्तिक दारुण अनुभूति से हमें जोड़ती है और सभ्यता को पतन के हाथ सौंपते हुए भूमिका का अंत कर रही है। यहाँ काल खण्ड है जो अपनी भूमिका का निर्मम अवसान करने की ओर है। दरअसल यह इतिहास की त्रासद भूमिका की ओर इशारा है जिसके पीछे सभ्यता व संस्कृति के अनेक संघात एवं विचलन हैं। यह संघात और विचलन सामाजिक संरचना की उद्देश्यहीन गतिमानता में है। इसका कारण कहीं न कहीं समाज की निर्मिति और उसकी परिकल्पना में है। इस विवर्ण होते समाज का जिम्मेदार फिर कौन ? जाहिर है कि इसका उत्तर उस सभ्यता के पास है जिसने इस समाज का दायित्व लिया। यह सब जानने-समझने के लिए मानव-संस्कृति और उसके विकासात्मक संसाधनों की ओर उन्मुख होना होगा। वह आदिम अवस्था जिसमें मानव संघटन के तत्व मिलते हैं, जब वह गुफाओं, पेड़ों में निवास करते हुए धीरे-धीरे समूह में आने लगता है और अपना बसेरा खुले में करता है। मानव-संस्कृति में विकास का यह सोपान आग की खोज से आगे जाता है। अब उसने कबीलाई संस्कृति में प्रवेश कर लिया है। यह सामाजिक समझौते की अवस्था है जिसके बाद उसने समाज से राज्य की ओर कदम बढ़ाए। इस सोच में वर्चस्व की संस्कृति शामिल थी और उसने ही सत्ता का अभिकरण स्थापित किया। सत्ता का यह अभिकरण पहले ज्ञान सत्ता के रूप में निर्मित हुआ। फिर इसने राज सत्ता की प्रस्तावना की और इसे स्थापित भी किया। यही कालावधि पुरोहित और राजा की आदिम सम्भावना को बल प्रदान करता है। हम सभी को ये सारी विकास यात्रा अच्छी तरह मालूम है कि इसी के साथ राज्य

संस्था का आरंभ होता है। यह राज्य बहुत सारी सभ्यताओं में गणतांत्रिक संगठन के रूप में निर्मित हुए तो तमाम ऐसी सभ्यताएं भी रहीं जिसमें ऐसा सम्भव ही न हुआ। हालांकि सभी राजतंत्र का ही स्वरूप रहे। इसमें संदेह नहीं कि राजतंत्र का समृद्ध और गौरवशाली इतिहास लगभग हर सभ्यता में ही मिलता है। मगर इस राजतंत्र की प्रजा का कोई इतिहास नहीं मिलता। ये मुख्यधारा से भी बाहर ही रहे। यानि राज्य की उत्पादक शक्तियाँ इस व्यवस्था के लिए महत्वहीन रहीं। उत्पादन और वितरण की जन-संस्कृति जिसे श्रम-संस्कृति भी कह सकते हैं- साफतौर पर इसकी कोई सामाजिक या राजनीतिक भूमिका ही तय नहीं की जा सकी। यह दशा हजारों साल तक बदस्तूर सारी दुनिया की हर सभ्यता में कमोबेश ऐसे ही जारी रही।

अब देखा जाय तो दुनिया के हर समाज और राज्य पुरोहित और राजा की नियामक व्यवस्था को कायम करने वाली संस्था बने। इसके पहले न तो राज्य का कोई नियामक विचार था और न ही सत्ता की परिकल्पना ही थी। इसे दैवी उत्पत्ति से जुड़ी भावना में देखा गया। हालांकि सामाजिक समझौते के बाद का स्तर है जब हमने 'जीयो और जीने दो' सहअस्तित्व की विश्वसनीय धारणा का परस्पर विचार विनिमय किया। इस अवधारणा में गनीमत थी कि इसका जनतांत्रिक पक्ष था। यही कारण है कि राज्य और समाज गतिशील संस्था के रूप में सामने आए। कबीले से राज्य बना और इससे राजतंत्र स्थापित हुआ। सदियों से राजतंत्र में ही राज्य और समाज रहे। इसमें मनुष्य के जीवन की अनिवार्य दशाएं भी अनुबंधित रहीं। यह हमारे लिए विकट समय की तरह था। विकास और भौतिक प्रगति का अभियान भी इसी से बंधा रहा। इस भौतिक विकास के पीछे मानव-श्रम और उससे होने वाला उत्पादन था। इस मानव-श्रम के मूल्य का निर्धारण राजतंत्र ही करता था जो उत्पादन का स्वामी भी था। यानि श्रम और उत्पादन से समाज का संचालन राजतंत्र के द्वारा किया जाता था।

ये सारी बातें मानव इतिहास की पूर्व पीठिका के रूप में दर्ज हैं। हजारों साल की इस श्रम-शक्ति और उत्पादन का लाभ व्यक्ति आधारित सत्ता उठाती रही जिसे हम राजतंत्र के रूप में देखते हैं। उत्पादन का यह शोषण तंत्र सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में पूरे विश्व में सदियों से चला आया। इसके पीछे इस शोषण-तन्त्र को सुदृढ़ बनाने में अनेक संस्थाएँ रची गईं। धर्म का संस्थानीकरण इसमें प्रमुख है। यहीं हम देखते हैं कि धर्मतत्ववाद मानव-संस्कृति और सभ्यता में एक विशिष्ट विचार के रूप में विकसित हुआ। इस लिहाज से धीरे-धीरे किसी न किसी धर्म का उदय हम पूरी दुनिया में देखते हैं। यह धर्म-सत्ता ही राज-सत्ता को समानांतर निर्देशित करती जाती है। यही पुरोहितवाद और सामंतवाद का मूल है। आरंभ में ज्ञान-समाज पर इसी पुरोहितवाद का प्रभाव दुनिया भर में दृष्टिगत है। ज्ञान की यही आधारशिला उस ज़माने में विचार और दर्शन के विकास का कारण रही। इसी विचार और दर्शन के नाम पर समाज की व्याख्याएँ दी गईं जिसे धर्म की संस्था से अधिमान्यता मिली और यहीं से राज्य के दैवी उत्पत्ति के सिद्धांत को पुख्ता किया गया।

इस प्रसंग में हम देख सकते हैं कि सभ्यता और समाज अपने विकास-क्रम में श्रम आधारित समाज को प्रभु वर्ग के अधीन करने का राजनीतिक उपक्रम करते हैं। इस तरह समाज अभिजन और श्रमिकजन में तब्दील होता जाता है। उस दौरान व्यक्ति-सत्ता प्रमुख रही। वर्चस्व के आधार पर अभिजन को प्रभुजन मान लिया गया। ऐसा सिर्फ़ भारत में नहीं हुआ बल्कि पूरे विश्व में यह व्यवस्था कायम हुई। यह व्यवस्था सभी सभ्यताओं में लगभग एक जैसी मिलती है। कह सकते हैं कि ये तत्कालीन समाज और सभ्यता की राजनीतिक आवश्यकता थी। बहरहाल, इस व्यवस्था ने विभेदक रेखाएँ खींच कर मनुष्य की आकांक्षाओं को परवश बनाया। परिणामस्वरूप मनुष्य का एक वर्ग ही प्रजा में बदल गया। यह प्रजा ही सामंती वैभव या प्रकारांतर से प्रभुजन की सम्पत्ति बना। इसी प्रवृत्ति ने समाज में दास प्रथा को दुनिया के कई देशों में विकसित किया। जहाँ दास प्रथा नहीं विकसित हुई वहाँ इसका भिन्न रूप मिला।लेकिन इसका अस्तित्व किसी न किसी रूप में बरकरार रहा। तो इसे हमारी व्यवस्था में परिवार से लेकर वृहत्तर समुदाय और उसकी सत्ता तक देखा गया। इसको कायम रखने के लिए समाज के ज्ञानी वर्ग ने जिसे अलग से ज्ञान-समाज कहते हैं, जो सबका नियामक है--उसने तरह-तरह के प्रावधान किए जिसमें राज-सत्ता से लेकर पितृसत्ता और उसकी आनुषंगिक इकाइयों का गठन हुआ। सदियों तक चली इस व्यवस्था ने अपना सिर्फ स्थानीय रूप नहीं रखा, स्थानीय राज्य ही काफी नहीं समझा बल्कि इसके लिए राज्य विस्तार की आकांक्षाएँ बलवती रहीं। इसका परिणाम रहा कि पूरा विश्व ही मानव-विकास की त्रासद गाथा के रूप में दिखता है। युद्ध और उन्माद में ही राजतंत्र का वैभव दिखा। इन पर महाकाव्य रचे गए। इन महाकाव्यों को अपार लोकप्रियता मिली। हालांकि सत्य से हट कर ये महाकाव्य अपने शासकों का विरुद रचते हैं। चाहे वे होमर का महाकाव्य 'इलियड' और 'ओडिसी' हो या वर्जिल की 'ऐनिड' या फिर वाल्मीकि का 'रामायण' और व्यास का 'महाभारत' ये सभी अपने राजा का ही इतिहास जैसा बखान करने वाले ग्रंथ हैं। हालांकि होमर को छोड़ कर शेष दो भारतीय महाकाव्य इतिहास भी नहीं हैं लेकिन बहुत से भारतीय विद्वान इन्हें इतिहास की श्रेणी में शामिल करने का दावा करते हैं। जबकि ये पौराणिक आख्यान हैं और संबंधित काल की सापेक्षता में राजतंत्र का ही आख्यान हैं। ले दे कर कवि-समय के अनुरूप राजाओं के सिलसिले, उनके पराक्रम और वैभव की गाथायें ही तो हैं। इनका इतिहास होना न होना जनधारणाओं में उतना अर्थपूर्ण नहीं है बल्कि वह लोककथाओं से जुड़ी प्रबल मान्यताएँ हैं। यह लोक-संस्कृति की प्रवाहमान धारा का बड़ा आधार होने के कारण भी उपेक्षित नहीं की जा सकती। लिहाजा इसे हम राजा का विरुद ही मान कर चलें तो कोई हर्ज़ नहीं लगता। जेरे बहस ये इतिहास है या